बैद्यनाथ
जुकामो
नये और विगड़े -
जुकाम सर्दी के कष्टों को
दूर करने वाली
गुणकारी दवा •
बैद्यनाथ
कृमिहर
सिरप
वच्चों के
पेट के कीड़ों को

बैद्यनाथ कासामृत

नई-पुरानी खांसी-

कफ, हांफनी तथा

सूखी खांसी की

प्रसिद्ध दवा.

बैद्यनाथ ईसबोल

आंव के दस्त,

पेचिश, मरोड़ तथा

॥ ॐ शिवाय नमः ॥

पुष्पदंताचार्य प्रणीत-

शिवमहिम्न स्तोत्र

भाषा टीका सहितम्

पं० धनुषधारी मिश्र कृत ।
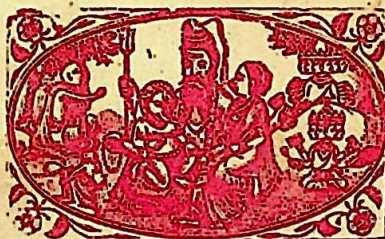
* प्रकाशक-फर्म *

बाबू बैजनाथ प्रसाद बुक्सेलर,
राजादरवाजा बनारस सिटी ।

सन् १९४० —— मूल्य -)॥

३/२२८

❀ श्रीगणेशायनमः ❀

श्रीशिवमहिम्नस्तोत्रम् ।

श्री १०८ ... पुस्तकालय ... काशी.

प्रारम्भः ।

❀ पुष्पदंतउवाच ❀

महिम्नःपारन्ते परमविदुषो यद्यसदृशी । स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपितदवसन्नास्त्वयिगिरः ॥ अथावाच्यः सर्वस्त्रमति परिणामावधिगृणन् । ममाप्येषस्तोत्रे हरनिरपवादः परिकरः ॥ १ ॥

हे हर ! (जगत् के पीड़ा को हरने वाले) महादेवजी ! आपकी महिमा के पार को किंचिन्मात्र भी न जानते हुए अज्ञानियों से गाई हुई स्तुति, यदि आपके अयोग्य होवे तो ब्रह्मादिकों की भी जो वाणी यानी गाई हुई स्तुति है, वह भी सब निष्फल हो जावेगी, उसमें जो हमारा

अधिकार न होगा तो उनका (ब्रह्मादिकों का) भी अधिकार न होगा अतः दोनों समान हुए ! तथापि इस जन को अपने बुद्धि परिणाम (परिपाक) से अवधि अर्थात् सीमा तक कहना अवश्यही है इसमें वह आपके द्वारा अवाच्य कहने योग्य नहीं है । यदि ऐसा है तो मेरा भी इस स्तोत्र में जो आरम्भ है, वह निरपराध होवे, यही मैं चाहता हूँ ॥ १ ॥

अतीतःपन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो । रतद्व्यावृत्यायं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि ॥ स कस्य स्तोतव्यः कतिविध गुणः कस्यविषयः ॥ पदेत्ववर्चीने पतति-न मनः कस्य न वचः ॥ २ ॥

हे प्रभो ! आपकी महिमा का मार्ग वाणी और मन से परे है, जिसे वेद भी चकित होकर कहते है कि यह मार्ग अतद्व्यावृत्ति करके पावे सो नहीं, ऐसे अनुमान से आपका महिमा को वेद ही जानते हैं तो ऐस महिमा वाले आप किससे स्तुति किये जाओ । कौन जाने आप

में कितने गुण हैं और आप किस करके ग्राह्य हो। परन्तु यह आपके स्थिति प्रलय कारक विषय में किसका मन अथवा वाणी ने पड़े अर्थात् आपके गुण सभी लोग अपनी २ बुद्धि के अनुसार कहा चाहते हैं। अतः मैं भी कुछ प्रार्थना करता हूं ॥ २ ॥

मधुस्फीतावाचः परमममृतं निर्मितवत।स्तवब्रह्मन्किंवा मपिसुरगुरो र्विस्मयपदम् ॥ ममत्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः। पुनामीत्यर्थेऽस्मिन्पुरमथनबुद्धिर्व्यवसिता ॥ ३ ॥

हे भगवान्! परम अमृतरूप मधु सदृश मिष्ठ यानी कोमल वेदरूप वाणी रचते हुये ब्रह्माजी को भी वाणी आपके विषय में विस्मय को प्राप्त हो गई तो हम लोगों की बात ही क्या। तथापि हे त्रिपुरमथन! मैं तो केवल आपके पवित्र करने वाले गुणों के कथन से अपनी बुद्धि को पवित्र करता हूं, मेरी मति ऐसी निश्चित हुई है ॥ ३ ॥

तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत् । त्रयीवस्तुव्यस्तं तिसृषु गुण भिन्नासुतनुषु ॥ अभव्यानामस्मिन्वरद रमणीयामरमणीम् । विहंतुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके-जड़धियः ॥ ४ ॥

हे वरद ! (वर के देने वाले) जो जगत की उत्पत्ति, रक्षा, प्रलय करने वाले ऐश्वर्य हैं, जो गुणों से भिन्न याने ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों देवों में माने गये हैं, वस्तुतः वह आपही हो । आपका ऐश्वर्य ही वेदत्रयी में सारभूत है । हे भगवान् ! कई एक जड़ बुद्धि वाले (मीमांसक आदि) आपके ऐश्वर्य को सहन न करके आपकी निन्दा करते हैं । जो आपके इस अभव्य तथा रमणीय ऐश्वर्य में रमण न कर सके, वह दुर्बुद्धि हैं ॥ ४ ॥

किमीहः किं कायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनम् । किमाधारोधाता सृजतिकिमुपादान इति च ॥ अतर्क्यैश्वर्येत्वय्यनवसरदु-

स्थो हतधियः। कुतर्कोऽयंकांश्चिन्मुखरयति मोहायजगतः ॥ ५ ॥

निश्चय करके विधाता जगत् को रचता है, परन्तु कैसे रचता है ! क्या अधार उसके हैं, और उपादान क्या है। हे भगवान् ! इस प्रकार के जो सन्देह करते हैं वे कुतर्की हैं और मंदमति वालों को ही ठगते हैं, क्योंकि जगत् के मोह के लिये यह कुतर्कमात्र है । तथापि जो तर्क न किया जावे ऐसे ऐश्वर्य वाले आपके गुणानुवाद के लिये वही तर्क मुझे भी वाचाल बना रहा है ॥ ५ ॥

अजन्मानोलोकाः किमवयववंतोऽपिजगता मधिष्ठातारं किंभवविधिरनादृत्य भवति॥ अनीशो वा कुर्याद्भुवनजनने कःपरिकरो। यतोमंदास्त्वांप्रत्यमरवर संशेरतइमे ॥ ६ ॥

अवयव वाले लोक (देहधारी) क्या अजन्मा हैं ! जगत् की रचना क्या रचना करने वाले का निरादर

करके होता है ! और विधाता यदि न समर्थ हो तो क्या होगा ! इन जगत् के रचने में उसके पास कौनसा साधन है ! मंदमति वाले आपके विषय में जो इस प्रकार का सन्देह करते हैं, वह व्यर्थ है । हे अमरवर ! (देवश्रेष्ठ) मुझे तो आपके विषय में कुछ सन्देह नहीं है ॥ ६ ॥

त्रयीसांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति। प्रभिन्नेप्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ॥ रुचीनांवैचित्र्यादृजु कुटिल नानापथजुषां । नृणामेकोगम्यस्त्वमसि पयसामर्णवइव ॥ ७ ॥

हे भगवन् ! देवत्रयी, सांख्यत्रयी, योग, शैव मत, वैष्णव मत ऐसे भिन्न भिन्न मत होने से उन मतों के विषय में कोई वैष्णव मत और कोई शैव मत अच्छा कहते हैं, रुचि की विचित्रता से टेढ़े मार्ग में प्रवृत्त हुए मनुष्यों को अंत में एक आपही ऐसे प्राप्त होते हो, जैसे नदियाँ टेढ़ी सीधी बहती हुई सीधे समुद्र ही में मिलती हैं ॥ ७ ॥

महोक्षः खट्वांगं परशुरजिनं भस्म फणिनः । कपालंचेतीयंतव वरद तंत्रोपकरणम् ॥ सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवद् भ्रूप्रणिहितां । न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ॥ ८ ॥

हे भगवन् ! महोक्ष यानें बूढा बैल, खटिया का पावा परशु ! गज चर्म, भस्म, सर्प कपाल, इत्यादि आपकी धारण सामग्री है, परन्तु हे वरद ! वर देने वाले शिवजी ! उन ऋद्धियों को जो आपकी कृपा से देवता लोग भोगते हैं, आप क्यों नहीं भोगते ! ऐसी शङ्का पर कहते हैं कि स्वात्माराम याने योगी जान (आत्मज्ञानी) की विषय रूपी मृग तृष्णा नहीं भ्रमा सकती है ॥ ८ ॥

ध्रुवं कश्चित्सर्वं सकलमपरस्त्वद् ध्रुवमिदं । परोध्रौव्याध्रौव्येजगति गदति व्यस्तविषये ॥ समस्तेऽप्येतस्मिन्पुरमथन तैर्विस्मित इव । स्तुवञ्जिहेमित्वां न खलु ननु धृष्टामुखरता ॥ ९ ॥

हे भगवन् ! कोई इस सम्पूर्ण जगत को ध्रुव (नित्य) कहते हैं कोई अध्रुव याने अनित्य कहते हैं ऐसे विपरीत विषय वाले उन अनेक मतवादियों से विस्मित हुआ मैं आपकी स्तुति करने में लजाता हूँ और हे पुरारि ! उन्हीं बातों से मैं आश्चर्यित हुआ हूँ । यह वाचालता (ढिठाई) नहीं मुझको प्रेरणा करती है ॥ ९ ॥

तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरिविरंचो हरिरधः । परिच्छेत्तुयाता वनलमनलस्कंधवपुषः ॥ ततो भक्ति श्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश यत् । स्वयंतस्थेताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति ॥ १० ॥

हे भगवान् ! ऊपर को विरंचि (ब्रह्मा) और नीचे को विष्णु ऐसे दोनों देव आपके ऐश्वर्य को ठहराने लगे किंतु वे असमर्थ हुए, तब आपने उसे स्वयं धारण किया । पुनः हे देव ! श्रद्धा भक्ति से स्तुति करने में इन दोनों के लिये आपही ने प्रत्यक्ष दर्शन दिया तो आपकी सेवा क्या नहीं फलती ! अर्थात् अवश्यमेव फलती है ॥ १० ॥

अयत्नादापाद्य त्रिभुवन मवैरव्य-
तिकरम्। दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकण्डू-
परवशान्॥ शिरः पद्मश्रेणी रचितचरणां-
भोरुहबलेः। स्थिरायास्त्वद्भक्त्यास्त्रिपुर-
हरविस्फूर्जितमिदम्॥ ११॥

हे त्रिपुरहर, महादेव जी! जिस रावण ने वैरी रहित तीनों लोकों के राज्य बिना श्रम के ही प्राप्त किया था और जिसकी भुजायें सदा ही समर के लिये उत्कंठित (खुजलाती) रहती थीं। जिसने अपने मस्तक रूपी कमलों को वलय (हार) बना कर आपके चरण कमलों को समर्पित किया था वह आपके स्थिर भक्ति का ही विकास मात्र था, ऐसे आपको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ११॥

अमुष्य त्वत्सेवा समधिगत सारं भु-
जबलं। बलात्कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ
विक्रमयतः॥ अलभ्यापातालेऽप्यलस-

चलितांगुष्ठाशिरसि । प्रतिष्ठा त्वय्यासी-
द्ध्रुवमुपचितोमुह्यति खलः ॥ १२ ॥

हे भगवन् ! आपके कैलास में रहते हुए भी अपने भुज-
बल की परीक्षा करने वाले उस रावण को पाताल में प्रतिष्ठा
नहीं हुई । उस भुजबल ने आपकी सेवा से ही पराक्रम को
प्राप्त किया था, तथापि वह सहज ही चलाये हुए आपके पैर
के अँगूठे से दब गया । सारांश यह है कि जब रावण कैलास
पर्वत उठाने लगा तब अपने पैर का अँगूठा हिलाया था, उसी
समय उसकी भुजायें दबगई और पाताल के लोग हँसने लगे ।
इस प्रकार रावण की शोभा बिगड़ गई । ठीक है, दुर्जन लोग
ऐश्वर्यवान होने से मोह को प्राप्त हो ही जाते हैं ॥ १२ ॥

यदृद्धिं सूत्रामणोवरद ! परमोच्चैरपि
सती । मधश्चक्रेबाणः परिजनविधेयास्त्रिभु-
वनः ॥ नतच्चित्रंतास्मिन्वरिवसितारत्व-
च्चरणयो । नंकस्याप्युन्नत्यैभवतिशिरस-
स्त्वय्यवनतिः ॥ १३ ॥

हे प्रभो ! जिस बाणासुर ने सूत्रामा याने इन्द्र की बढ़ती हुई ऋद्धि याने ऐश्वर्य को दबाकर तुच्छ किया था। त्रिभुवन जिसके अधीन था, वह आपही की कृपा थी। यह आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि वह तो आपके चरण में रत रहता था। सत्य है, आपको नमस्कार करने से किसकी अवनति हो सकती है॥ १३॥

अकाण्डं ब्रह्माण्डं क्षयचकितदेवासुर कृपा। विधेयस्याऽसीद्यस्त्रिनयनविषं संहृतवतः॥ सकल्माषःकंठेतवनकुरुतेनांश्रियमहो। विकारोऽपिश्लाघ्यो भुवनभयभंगव्यसनिनः॥ १४॥

हे त्रिनयन ! समस्त ब्रह्मांड को क्षय होने के डर से चकित हुए देवों तथा राक्षसों पर कृपा करने वाले आप कालकूट विषको स्वयं पी गये, उस समय से विषपान के कारण आपके कंठ में जो कालापन है वह क्या नहीं शोभता है ! किन्तु वह शोभता है, क्योंकि त्रिभुवन के भंग होने के भय से दुःखित आपके काले कंठ को प्रशंसा के कारण आप नीलकंठ कहाते हैं॥ १४॥

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवा सुर-नरे । निवर्तन्तेनित्यं जगतिजयिनो यस्य विशिखाः ॥ सपश्यन्नीशत्वामित-रसुरसाधारणमभूत् । स्मरःस्मर्तव्यात्मा-न हि वशिषु पथ्यः परिभवः ॥ १५ ॥

हे ईश ! सम्पूर्ण जगतको जीतने वाले कामदेव के विशिख अर्थात् बाण देव, असुर, मनुष्य आदिकों में कहीं भी अपने अर्थकी सिद्धि किये बिना नहीं लौटे ऐसा वह मदन, आपको अन्य देवताओं के समान देखता हुआ स्मरण करने के योग्य हुआ अर्थात् दग्ध होगया ॥ १५ ॥

महीपादाघाताद्व्रजति सहसासंश-यपदं । पदंविष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्ण ग्रहगणम् ॥ मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यंयात्यनिभृत-जटाताडिततटा । जगद्रक्षायैत्त्वंनटसि-ननुवामैवविभुता ॥ १६ ॥

हे भगवन् ! आप जगत की रक्षा के लिये नाचते हो, यह आपकी उल्टी विभूति है, क्योंकि पृथ्वी भी आपके पादाघात से संशय को प्राप्त होती है, कि मैं कहीं धँस न जाऊँ और आपकी भ्रमण करती हुई अर्गली सरीखी भुजाओं से डगमगाते हुए तारागणों के साथ आकाश भी दुखी होता है। यहाँ तक कि चंचल जटाओं से ताड़ित हुआ स्वर्ग भी बारम्बार थक जाता है ॥ १६ ॥

वियद्व्यापीतारा गणगुणितफेनोद्गमरुचिः । प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते॥जगद्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि । त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिमदिव्यं तव वपुः ॥ १७ ॥

हे भगवन् ! जल का प्रवाह, आकाश में व्याप्त तारागणों से गुणित याने गिरा हुआ फेन उठने की कान्ति को धारण किया है वही आपके मस्तक पर बिन्दु समान छोटा सा दीख पड़ता है और उससे यह जगत् द्वीपाकार समुद्र से घिरा हुआ सा ज्ञात होता है। इस कारण प्रदीप्त महिमा धारी आपका शरीर उत्तम जान लेना चाहिये ॥ १७ ॥

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेंद्रोधनुरथो । रथांगेचन्द्राकौं रथचरणपाणिः शर इति ॥ दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडंबरविधिः । विधेयैः क्रीडंत्यो न खलु परतंत्राः प्रभुधियः ॥ १८ ॥

हे महादेव ! तृण के समान त्रिपुरासुर को भस्म करने की इच्छा करते हुये आपका क्या यह आडंबर याने बखेड़ा करना है ! देखिये पृथ्वी तो रथ, ब्रह्मा सारथी नगेन्द्र याने पर्वतों का राजा धनुष, सूर्य—चन्द्र रथ के चक्र तथा चक्रपाणि विषधर बाण बनाया । यह तो ठीक है क्योंकि भक्तों के साथ क्रीड़ा करती हुई प्रभुओं की बुद्धि निश्चय करके परतन्त्र याने पराधीन नहीं होता ॥ १८ ॥

हरिस्तेसाहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो । र्यदेकोनेतस्मिन्निजमुदहरं नेत्र कमलम् ॥ गतोभक्त्युद्रेकः परिणतिमसाचक्र-

वपुषा । त्रयाणांरक्षायै त्रिपुरहर ? जागर्ति जगताम् ॥ १९ ॥

हे त्रिपुरहर ! आपके चरणों में सहस्र फूलों में का बलि ताने भेंट रखकर विष्णु भगवान् जिस समय पूजन करते थे, उस समय उन फूलों में एक फूल कम होगया तब अपने नेत्र कमल को निकालते भये । तब से भक्ति की उद्रेक याने वृद्धि के परिणाम को प्राप्त होता हुआ (यह भक्ति की सीमा हुई) वह सुदर्शन चक्र बनकर स्वर्ग मृत्यु, पाताल लोक की रक्षा के लिये जागृत है ॥ १९ ॥

क्रतौसुप्ते जाग्रत्वमसि फलयोगे क्रतुमतां । क्वकर्मप्रध्वस्तं फलतिपुरुषाराधनमृते ॥ अतस्त्वां संप्रेक्ष्यं क्रतुषुफलदानप्रतिभुवं । श्रुतौश्रद्धांवद्ध्वा दृढ़परिकरः कर्मसुजनः ॥ २० ॥

हे भगवन् ! आपही को यज्ञ के फल दाता समझ कर और वेद में दृढ़ विश्वास कर मनुष्य कर्मों को आरंभ करते हैं, क्योंकि जब क्रिया रूप यज्ञ समाप्त हो गया तो आपही

विद्यमान रहते हो कदाचित् कहो नष्ट कर्म ही फल देता है तो नियम है कि चैतन्य पुरुष के आराधना बिना नष्ट कर्म फलदायक नहीं हो सकता आशय यह कि कर्ममात्र के फलदाता आपही हो ॥ २० ॥

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृतामृषीणामार्त्विज्यं शरणदसदस्याः सुरगणाः॥ क्रतुभ्रंशस्त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यसनिनो । ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः ॥ २१ ॥

हे शरणद ! जिस समय कर्मकाण्ड में चतुर यज्ञपति राजा दक्ष प्रजापति के यज्ञ में ऋषि लोग ऋत्विज थे और देवता लोग सदस्य थे उस समय आपने उनका यज्ञ विध्वंस किया था । क्योंकि वह अभिमान से यज्ञ फल की कामना कर रहे थे, श्रद्धा से नहीं ठीक है, श्रद्धा रहित यज्ञ का फल विपरीत ही होता है ॥ २१ ॥

प्रजानाथंनाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहि-

तरं । गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषु मृष्यस्य वपुषा ॥ धनुष्पाणेर्यातं दिवमपिसपत्राकृतममुं त्रसंतस्तेऽद्यापित्यजति न मृगव्याधरभसः ॥ २२ ॥

हे नाथ ! बलात्कार से अपनी ही लड़की में विषय करने वाले ब्रह्मा हरिणी रूपिणी अपनी कन्या से हरिण योनि पाकर भी विषय की अत्यन्त इच्छा करने लगे, ऐसे ब्रह्मा रूपी मृग को व्याघ्र रूप आप धनुषबाण लेकर आज तक भी नहीं छोड़ते । यद्यपि डर कर वे स्वर्ग में चले गये तथापि उस डरे हुए ब्रह्मा के प्रति यह आप का आखेट (शिकार) विचित्र है ॥ २२ ॥

स्वलावण्याशंसा धृतधनुषमह्नाय तृणवत् पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वापुरमथन पुष्पायुधमपि ॥ यदि स्त्रैणं देवी यमनिरत देहार्ध घटना । दवैतित्वामद्धावत वरद मुग्धा युवतयः ॥ २३ ॥

हे पुरमथन ! आपने पुष्पायुध याने मदनको तृणके समान शीघ्र जला कर छार कर दिया ऐसा देखकर, भी पुनः देवी पार्वती आपको स्त्रैण याने अपने वश जानती हैं यह अत्यन्त खेद की बात है। वह देवी कैसी है कि अपनी सुन्दरता की स्वयं प्रशंसा करती है और मदन कैसा है कि धनुष को धारण करने वाला निरन्तर देहार्ध घटना याने आधे शरीर में अपने को रखने से हे वरद ! युवतिजन (स्त्रियाँ) प्रायः मूर्ख ही रहती हैं ॥ २३ ॥

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचरा । श्चिताभस्मालेपःस्रगपिनृकरा-टी परिकरः ॥ अमंगल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं । तथापिस्मर्तृणां वरद परमं मंगलमसि ॥ २४ ॥

हे स्मरहर ! आपका श्मशान में क्रीड़ा करने, भूत प्रेत पिशाचादि को साथ रखने और शरीर में चिता के भस्म को लेपन करने तथा नर मुण्डों की माला पहिनने आदि बीभत्स कर्मों से यद्यपि आपका स्वभाव अमंगल है तथापि स्मरण

करने वालों को हे वरद ! आप परम मंगल रूप हैं ॥ २४ ॥

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमभिधायात्तमरुतः । प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमद सलिलोत्संगतिदृशः ॥ यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्ज्यामृतमये । दधत्यं तस्तत्वं किमपियमिनस्तात्किल भवान् ॥ २५ ॥

हे भगवान् ! प्राणायामादि करने वाले विषयों से निवृत्त यति अर्थात् योगीजन अपने अन्तःकरण में अपने मनको स्थिर करने वाले जो किसी तत्त्व को देखकर जिनके रोमांच हो रहे हैं इस प्रकार आनन्द करने से नेत्रों में जल भर आया है मानों वह अमृतमय ह्रद (तालाब) में गोता लगाय आनन्द को प्राप्त होते हैं वह तत्त्व निश्चय करके आपही हैं ॥ २५ ॥

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वंहुतवहः । त्वमापस्त्वंव्योम त्वमुधरणिरात्मात्वमिति च ॥ परिच्छिन्नामेवं त्वयि

परिणता बिभ्रतिगिरम् । न विद्मस्तत्तत्वं-
वयमिह तु यत्त्वं न भवसि ॥ २६ ॥

हे भगवन् ! आप सूर्य हो, आप चन्द्रमा हो, आप वायु हो आप अग्नि हो, आप जल हो, आप स्वर्ग हो आप पृथ्वी हो और आत्मा भी आपही हो हे देवाधिदेव ! इस प्रकार आपको ज्ञानी और भक्तजन परिच्छिन्न अर्थात् पृथक २ कहते हैं सो भलेही कहैं परन्तु हम नहीं जानते कि ऐसा कौन तत्त्व है जिसमें आप नहीं हो ॥ २६ ॥

त्रयींतिस्रोवृत्ति स्त्रिभुवनमथोत्रीन-
पिसुरा । नकाराद्यैर्वर्णै स्त्रिभिरभिदधत्ती-
र्णविकृतिः ॥ तुरीयं ते धामध्वनिभिरवरु-
धानमणुभिः । समस्तं व्यस्तं त्वां शरण-
दगृणात्योमिति पदम् ॥ २७ ॥

शरणद ! शरण के देने वाले शिवजी । यह ब्रह्मपद अर्थात् अ, उ, म भी आपही की स्तुति करता है ! क्या करता हुआ कि आकारादि तीनों वर्ण करके त्रयी अर्थात् वेदत्रयी

ऋग् यजु साम) और तीनों वृत्ति अर्थात् (उदात्त अनुदात्त स्वरित) अथवा जाग्रतादि अवस्था धारण करता हुआ । वह ओंकार कैसा है कि तीर्ण विकृती अर्थात् निर्विकार और सूक्ष्म ध्वनियों से आपको तुरीय अवस्था (चतुर्थधाम) को बतारही है ॥ २७ ॥

भवः शर्वोरुद्रः पशुपतिरथोग्रः सह-महां । स्तथाभीमेशानाविति यदभिधा-नाष्टकमिदं ॥ अमुष्मिन्प्रत्येकं प्रविचरति देवाः श्रुतिरपि । प्रियायास्मैधाम्ने प्रणि-हितनमस्योस्मि भवते ॥ २८ ॥

हे देव ! भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, उग्र, महादेव भीम ईशान यह जो आपके नामका अष्टक है इस प्रत्येक नाम में वेद और देवतागण विहार करते हैं, इस लिये ऐसे प्रिय धाम हैं । आपको मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ ॥ २८ ॥

नमो नेदिष्ठायप्रियवरदविष्ठाय च नमो । नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहरमहिष्ठाय च

नमः ॥ नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो नमः सर्वस्मै ते तदिदमिति, सर्वाय च नमः ॥ २९ ॥

हे शिव ! नेदिष्ठ अर्थात् अत्यन्त समीप आपके लिये नमस्कार है और देविष्ठ अर्थात् अत्यन्त दूरमें रहने वाले आपके लिये नमस्कार है, क्षोदिष्ठ अर्थात् परम सूक्ष्म आपके लिये नमस्कार है हे, स्मरहर ! यानी कामदेव को जलाने वाले जो आप महिष्ठ यानी बड़े और वर्षिष्ठ यानी अत्यन्त वृद्ध आपके लिये नमस्कार है। हे त्रिनयन ! यविष्ठ अर्थात् अत्यन्त युवा (जवान) अवस्था वाले आपके लिये नमस्कार है और हे सर्वस्वरूप ! आपके लिये नमस्कार है और समस्त लोकों को उल्लंघन करजाने वाले आपके लिये नमस्कार है ॥ २९ ॥

बहलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः । प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः ॥ जनसुखकृतेसत्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः । प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥ ३० ॥

हे शिवजी ! जगतकी उत्पत्ति के लिये परम रजोगुण रूप धारण किये भवनाम के आपको बारम्बार नमस्कार है और उस जगत को संहार करने में तीनों गुण को धारण करने वाले हररूप आपके लिये पुनः २ नमस्कार है, जगत् से सुखके लिये सत्व गुणको उत्पन्न करने वाले मृड नामक आपको बारम्बार नमस्कार है प्रगट तीनों गुणों (सत्व, रज, तम,) से परे जो अनिर्वचनीय पद है ऐसे पद से विशिष्ट शिवरूप आपको बारम्बार नमस्कार हैं ॥ ३० ॥

कृशपरिणतिचेतः क्लेशवश्यं क्व-
चेदम् । क्वच तवगुणसीमोल्लंघिनीशश्व-
दृद्धिः ॥ इति चकितममदीकृत्य मां भ-
क्तिराधा । द्वरदचरणयोस्तेवाक्यपुष्पो-
पहारम् ॥ ३१ ॥

हे भगवन् ! कृश है परिणाम जिसका याने अत्यन्त मन्द और क्लेश के आधीन ऐसी मेरी चित्त कहाँ और गुणों की सीमा को उल्लंघन करने वाली आपकी ऋद्धि कहाँ ऐसे चकित हुए मुझको आपके चरणों की भक्ति में आनन्द कर

रक्खा है इस लिये हे वरद ! वाक्यरूप पुष्पोपहार से मैं आपके चरणों का पूजा करता हूं ॥ ३१ ॥

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धु पात्रे। सुरतरुवरशाखा लेखनी-पत्रमूर्वी ॥ लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालम् । तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥ ३२ ॥

हे ईश ! असित याने काले पर्वत के समान जो कज्जल (स्याही) समुद्र पात्र में होवे, सुरवर (कल्पवृक्ष) की शाखा की उत्तम लेखनी हो और पृथ्वी पत्र हो इन साधनों को लेकर शारदा स्वयं सर्वकालही लिखती रहें तथापि आपके गुणों का पार नहीं पा सकतीं तो मैं कौन हूं ॥ ३२ ॥

असुरसुरमुनीन्द्रै रर्चितस्येन्दु मौ-ले। ग्रंथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य॥ सकल गुणवरिष्ठः पुष्पदंताभिधानो ।

रुचिर मलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार ॥३३॥

और असुर, सुर मुनियों से पूजित तथा विख्यात महिमा वाले ऐसे ईश्वर चन्द्रमौलि इस स्तोत्र को अलघु वृत्त याने बड़े (शिखरिणी) वृत्त में सकल, गुण श्रेष्ठ पुष्पदन्त नामक गन्धर्व ने बनाया ॥ ३३ ॥

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत् ।
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान्यः ॥
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथाऽत्र ।
प्रचुरतर धनायुः पुत्रवान्कीर्तिमांश्च ॥३४॥

शुद्ध चित्त होकर अनवद्य महादेवजी के स्तोत्र को जो पुरुष प्रतिदिन परम भक्ति से पढ़ता है वह इस लोक में धन्य धान्य और आयुको प्राप्त होता है साथही पुत्रवान् कीर्तिमान् भी होता है और मरने पर शिवलोक में शिव के तुल्य अर्थात् शिवस्वरूप हो जाता है ॥ ३४ ॥

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानं यागा-
दिकाः क्रियाः ॥ महिम्नस्तवपाठस्य कलां

नार्हन्तिषोडशीम् ॥ ३५ ॥

हे शिवजी ! दीक्षा, दान, तप, तीर्थ तथा योगादि क्रियाएँ सब आपके इस महिम्न स्तोत्र के पाठ की सोलहवीं कला को नहीं प्राप्त कर सकतीं ॥ ३५ ॥

आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्यं गंधर्व-भाषितम् ॥ अनूपमं मनोहारि शिवमी-श्वरवर्णनम् ॥ ३६ ॥

अनुपम और मनको हरने वाला ईश्वर वर्णनात्मक पवित्र, स्तोत्र पुष्पदंत गंधर्व का कहा हुआ समाप्त हुआ ॥ ३६ ॥

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः ॥ अघोरान्नापरो मंत्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥ ३७ ॥

महादेव जी से परे कोई देव नहीं, महिम्न से परे कोई स्तोत्र नहीं, अघोर मन्त्र से परे कोई मन्त्र नहीं और गुरु से कोई तत्त्व पदार्थ नहीं है ॥ ३७ ॥

कुसुमदशननामा सर्वगंधर्वराजः ।

शशिधरवरमौलेर्देवदेवस्यदासः ॥ सगुरु
निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषात् ।
स्तवनमिदमकार्षीद्दिव्यदिव्यं महिम्नः ॥

पुष्पदन्त नामक सब गन्धर्वों के राजा, भाल में चन्द्रमा को धारण करने वाले देवताओं के देवता महादेव जी के दास थे जब सुरगुरु महादेवजी के क्रोध से अपनी महिमा से भ्रष्ट हुए तब शिवके प्रसन्नार्थ इस परम दिव्य [महिम्न स्तोत्र] को बनाये ॥ ३८ ॥

सुरवरमुनि पूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुम् ।
पठति यदि मनुष्यः प्रांजलिर्नान्यचेताः ॥
व्रजतिशिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः ।
स्तवनमिदममोघं पुष्पदंतप्रणीतम् ॥३९॥

यह पुष्पदन्त का बनाया हुआ अमोघ स्तोत्र कैसा है कि सुरवर मुनियों करके पूजित और स्वर्ग तथा मोक्ष को देने का हेतु [मुख्य कारण] है। इसे जो मनुष्य अनन्यचित हाथ जोड़ कर पढ़ता है वह किन्नरों करके स्तुति किया हुआ शिवजी के समीप जाता है ॥ ३९ ॥

श्रीपुष्पदन्तमुखपंकज निर्गतेन ।
स्तोत्रेण किल्बिषहरेण हरप्रियेण ॥
कंठस्थितेन पठितेन समाहितेन ।
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ॥४०॥

सावधान होकर श्रीपुष्पदन्त के मुख से निकले हुए पापहारी तथा महादेवजी के प्रिय इस स्तोत्र को कण्ठ करने से सम्पूर्ण प्राणीमात्र के स्वामी श्री महादेवजी उनपर प्रसन्न होते हैं ॥ ४० ॥

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छंकरपादयोः ॥ अर्पिता तेन मे देवः प्रीयतां च सदाशिवः ॥ ४१ ॥

इस प्रकार इस वाङ्मयी पूजा को मैं श्रीशङ्कर जी के चरणों में अर्पण करता हूँ जिससे महादेव जी मुझ पर प्रसन्न रहें ॥ ४१ ॥

इति श्री भाषाटीकोपेतं शिवमहिम्न स्तोत्रं समाप्तम् ।

॥ अथ शिवतांडव स्तोत्रम् ॥

जटाटवीगलज्जलप्रवाह पावितस्थले ।
गलेवलंबिलंबितांभुजंगतुङ्गमालिकाम् ॥
डमड्डमड्डमड्डमन्निनादवड्डमर्वयं ।
चकारचंडतांडवं तनोतु नः शिवः शिवम् ॥ १ ॥

जटाकटाहसंभ्रमद्भ्रमन्निलिंपनिर्झरी ।
विलोलबीचिवल्लरीविराजमानमूर्धनि ।
धगद्धगद्धगज्ज्वलल्ललाटपट्टपावके ।
किशोरचन्द्रशेखरे रतिः प्रतिक्षणं मम ॥ २ ॥

धराधरेन्द्रनन्दिनीविलासबन्धुबन्धुर-
स्फुरद्दिगन्तसन्ततिप्रमोदमानमानसे ।
कृपाकटाक्षधोरणीनिरुद्धदुर्धरापदि ।
क्वचिद्दिगंबरे मनोविनोद मे तु वस्तुनि ॥३॥

जटाभुजंगपिंगलस्फुरत्फणामणिप्रभा ।
कदम्बकुंकुमद्रवप्रलिप्तदिग्बधूमुखे ।

मदांधसिंधुरस्फुरत्त्वगुत्तरीयमेदुरे
मनोविनोदमद्भुतं विभर्तु भूतभर्त्तरि ॥ ४ ॥
ललाट चत्वरज्वलद्धनंजयस्फुलिंगभा-
निपीतपंचसायकं नमन्निलिंपनायकम् ।
सुधामयूखलेखया विराजमानशेखरम्
महः कपालिसम्पदे सरिज्जटालमस्तु नः ॥५॥
सहस्रलोचनप्रभृत्यशेषलेखशेखर-
प्रसून धूलिधोरणीविधूसरांघ्रिपीठभूः ।
भुजंगराजमालया निबद्धजाटजूटकः
श्रियै चिराय जायतां चकोरबन्धुशेखरः ॥ ६ ॥
करालभालपट्टिकाधगद्धगद्धगज्ज्वल-
द्धनजयाहुतीकृतप्रचंडपंचसायके ।
धराधरेन्द्रनन्दिनीकुचाग्रचित्रपत्रक-
प्रकल्पनैकशिल्पनि त्रिलोचने रतिर्मम ॥ ७ ॥
नवीनमेघमण्डलीनिरुद्धदुर्धरस्फुर-
त्कुहूनिशीथिनीतमः प्रबन्धबद्धकन्धरः ॥
निलिंपनिर्भरीधरस्तनोतुकृत्तिसुन्दरः ।

कलानिधानबन्धुरः श्रियं जगद्धुरंधरः ॥ ८ ॥

प्रफुल्लनीलपंकजप्रपंचकालिमप्रभा ।
विलंबिकंठ कन्दली रुचिप्रबद्धकन्धरम् ॥
स्मरच्छिदं पुरच्छिदं भवच्छिदं मखच्छिदं ।
गजच्छिदांधकच्छिदन्तमंतकच्छिदं भजे ॥ ९ ॥

अखर्वसर्वमंगलाकलाकदम्बमंजरी ।
रसप्रवाहमाधुरीविजृंभणामधुव्रतम् ॥
स्मरान्तकं पुरांतकं भवान्तकं मखान्तकं ।
गजांतकांधकान्तकन्तमन्तकांतकं भजे ॥१०॥

जयत्यदभ्रविभ्रमभ्रमद्भुजंगमश्वम-
द्विनिर्गमत्क्रमस्फुरत्करालभालहव्यवाट् ।
धिमिंधिमिंधिमिंध्वनन्मृदंगतुङ्गमंगल-
ध्वनिक्रमप्रवर्त्तितः प्रचण्डतांडवः शिवः ॥११॥

दृषद्विचित्रतल्पयोर्भुजंगमौक्तिकस्रजो-
र्गरिष्ठरत्नलोष्ठयोः सुहृद्विपक्षपक्षयोः
तृणारविन्दचक्षुषोः प्रजामहीमहेन्द्रयोः
समप्रवृत्तिकः कदासदाशिवं भजाम्यहम् ॥१२॥

कदा निलिंपनिर्झरीनिकुञ्जकोटरे वसन् ।
विमुक्तदुर्मतिः सदा शिरस्थमंजलिं वहन् ।
विलोललोललोचनो ललाम भाललग्नकः
शिवेतिमंत्रमुच्चरन्कदासुखीभवाम्यहम् ॥ १३ ॥
निलिंपनाथनागरीकदम्बमौलिमल्लिका-
निगुंफनिर्भरत्त्वरन्मधूष्णिकामनोहरः
तनोतु नो मनोमुदं विनोदिनीमहर्निशं
पराश्रियः परं पदं तदंगजत्विषां चयः ॥ १४ ॥
प्रचण्डवाडवानलं प्रभाशुभप्रचारिणी ।
महाष्टसिद्धि कामिनी जनावहूत जल्पिनी ।
विमुक्तवामलोचनं विवाहकालिकध्वनिः
शिवेतिमन्त्रभूषणंजगज्जयायजायताम् ॥ १५ ॥

इति श्री दशमौलि विरचित शिवताण्डवस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

पं० श्रीबालमुकुन्द पाण्डेयेन संस्कृतम् ।

श्रीशिवार्पणमस्तु ।

पं० श्रीलाल उपाध्याय द्वारा—श्रीविश्वेश्वर प्रेस, काशी में मुद्रित ।
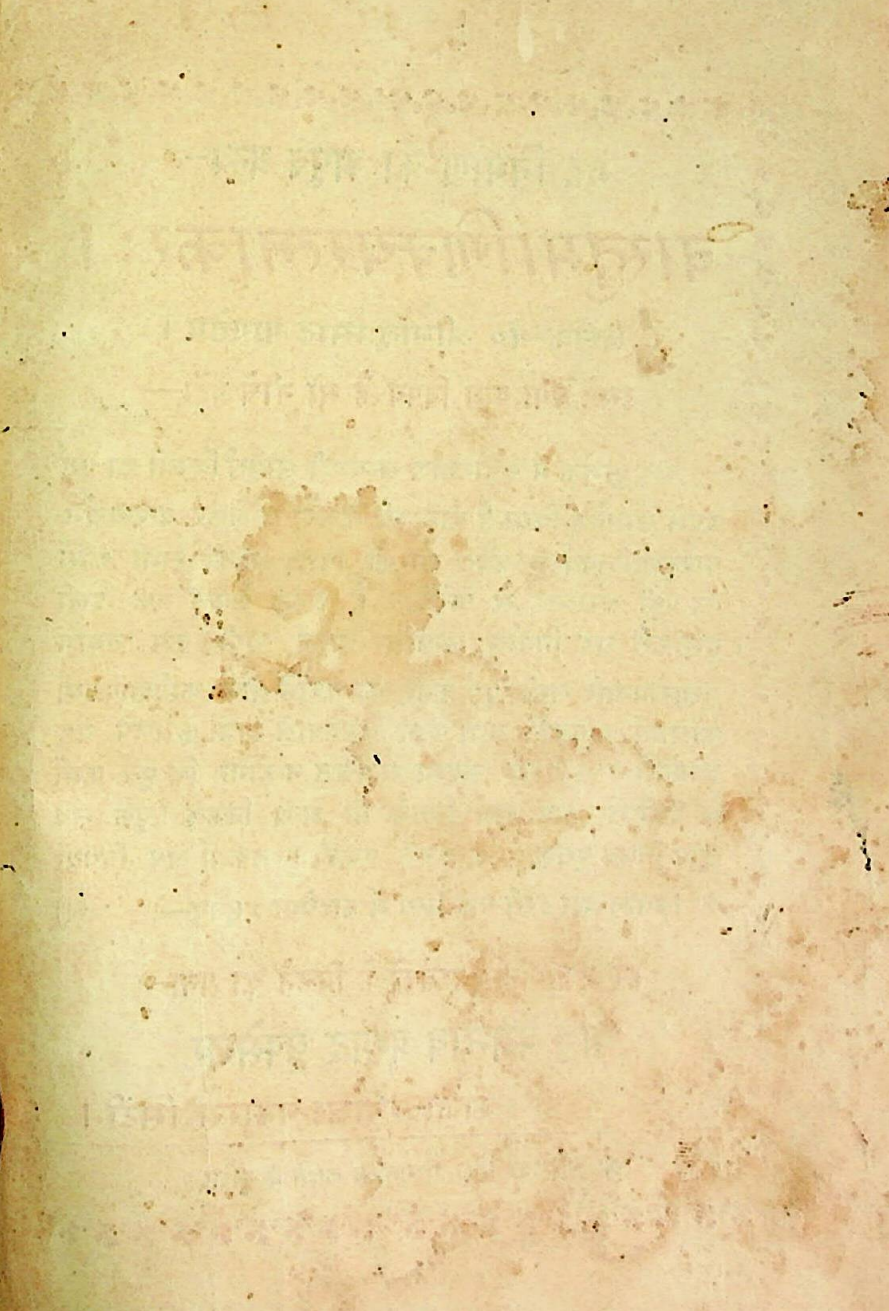
गृह निर्माण का अपूर्व ग्रन्थ—

वास्तुमाणिक्यरत्नाकरः।

लेखक—पं० श्रीमातृप्रसाद पाण्डेय।

इसमें क्या क्या विषय है सो नीचे पढ़ेः—

इस पुस्तक में गृहनिर्माण सम्बन्धी सम्पूर्ण विषयों का पूर्ण रूपसे समावेश किया है वास्तुकी भावना से लेकर वास्त्वर्चन-वास्तुशान्तिपर्यन्त और सारणी विशद रूपसे सभी कर्मों का बड़ी सरलता से निर्देशित है अस्तु केवल एक इसी पुस्तकसे गृह निर्माण सम्बन्धी वरन् वापी कूप तड़ाग वृक्षारोपनादि सभी पूर्त कर्मों के कराने वाले कर्मकाण्डियों आचार्यों पण्डितों तथा पठन करनेवाले छात्रों के लिये यह उपयोगी ग्रन्थ है यह कहना अनुचित न होगा कि पूर्त कर्मों के निमित्त अब तक जितने भी ग्रन्थ निकल चुके सब स्फुट विषय पृथक् पृथक् करके एकही पुस्तक में सब विषयों का विधान बस इसी एक ग्रन्थ में पाइयेगा। मूल्य— १।)

हर प्रकार की पुस्तकों के मिलने का पता—

बाबू बैजनाथ प्रसाद बुक्सेलर,

राजादरवाजा बनारस सिटी।

श्री विश्वेश्वर प्रेस, बुलानाला काशी में मुद्रित।